International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Advanced Studies of Multidisciplinary Research and Analysis – November 2023
Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

रामस्नेही संप्रदाय के भक्ति पदों का स्वरांकन

Kamal Trivedi, Dr. Seema Rathore

Department of Music, Govt. Meera Girls Pg College, Udaipur, MLSU Udaipur, Rajasthan, India

सार

रामस्नेही संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामचरण जी महाराज थे। उनका प्रादुर्भाव वि. स. १७७६ में हुआ। साधारण जन को लोकभाषा में धर्म के मर्म की बात समझाकर, एक सूत्र में पिरोने में इस संप्रदाय से जुडे लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

इन संतों ने हिंदू-मुसलमान, जैन- वैष्णव, द्विज- शूद्र, सगुण-निर्गुण, भक्ति व योग के द्वन्द्व को समाप्त कर एक ऐसे समन्वित सरल मानवीय धर्म की प्रतिष्ठापना की जो सबके लिए सुकर एवं ग्राह्य था। आगे चलकर मानवीय मूल्यों से सम्पन्न इसी धर्म को "रामस्नेही संप्रदाय' की संज्ञा से अभिहित किया गया।

परिचय

स्वामी रामचरण जी महाराज

प्रात: स्मरणीय स्वामी श्री रामचरण जी महाराज का जन्म विक्रम संवत 1776 सन 1720 (24-फ़रवरी-1720) माघ शुक्ल चतुर्दशी शनिवार को बखतराम जी ग्राम बनवाड़ा में पूज्य शीला माता देऊजी की कोख से हुआ। दीक्षा के समय आपकी आयु 31 वर्ष 7 माह थी | ये विजयवर्गीय वैश्य थे। इनका बचपन का नाम रामकृष्ण था। जन्म के पश्चात हिन्दु परम्परा के अनुसार नामकरण के अवसर पर जन्म पत्रिका बनाई गई तो ज्योतिषियों ने कहाकि यह बालक सम्राट या योगेश्वर होगा। बचपन में ये हंसमुख व आकर्षक थे। ये स्वस्थ शरीर व कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। इनका विवाह चांदसेन ग्राम के सम्पन्न परिवार की कन्या से हुआ था। यह जयपुर राज्य में महत्वपूर्ण पद पर सेवारत थे। अपने कार्यो के प्रति हमेशा निष्ठावान रहे। उनकी न्यायपरकता और निष्पक्षता से सभी लोग प्रभावित थे। 31 वर्ष की आयु में आपकी भेंट एक ज्योतिषी से हुई उसने आपको देखकर आश्चर्य प्रकट किया कि आपको सम्राट या योगेश्वर होना चाहिए। इस घटना से कुछ दिन पूर्व उनके पिता की मृत्यृ हुई थी इससे वे व्यथित थे। उन पर ज्योतिषी की बात का विशेष प्रभाव हुआ। उसी समय से वे सांसारिक बातों से उदासीन होने लगे तथा सन्यास ग्रहण कर लिया। जिस दिन ज्योतिषी ने यह बात बताई उसी रात्रि को उन्होंने स्वप्न मे देखा किवे ज्यों ही नदी में स्नान को उतरे उनका पैर फिसल गया और तेज धार में बहने लगे। उसी समय उक श्वेत वस्त्रधारी वृद्ध साधू ने उन्हें हाथ पकड़कर उस धार से बाहर निकाल लिया। इसी समय स्वप्न भंग हो गया। देखा तो वहां कुछ नहीं दिखा। इस घटना का उन पर गहरा प्रभाव हुआ। वे अपनी राजकीय सेवाऐ घर बार सब कुछ छोडकृकर स्वप्न का रहस्य जानने निकल पड़े। चलते – चलते ये शाहपुरा आये वहां पता चला कि उनके स्वप्न के अनुरूप् संत ग्राम दोतड़ा में निवास करते है। इस जानकारी से उन्हें अति आनन्द हुआ और वे संत दर्शन के लिए बेताब हो उठे और दोतड़ा की और चल दिये। उस समय दोतड़ा में स्वामी संतराम जी के शिष्य स्वामी कृपाराम जी निवास करते थे। स्वामी रामकृष्ण जी ने अपने आप को इनके चरणों में समर्पित कर दिया। इन्होंने अपने मन की सारी व्यथा उनके सामने रख दी। श्री कृपाराम जी ने योग्य जानकर अपने पास रहने की अनुमति प्रदान कर दी और बाद में अपना शिष्य बनाया। श्री कृपाराम जी ने उनकी हर तरह की परीक्षा के पश्चात विक्रम संवत 1808 भाद्रपद शुक्ल 7 गुरूवार को राममंत्र की दीक्षा देकर दीक्षित किया और उनका नाम रामकृष्ण से रामचरण रख दिया। उस समय इनकी आयु 31 वर्ष थी। दीक्षा प्रापित के बाद स्वामी रामचरण जी गुरू की आज्ञा से 7 वर्ष तक गुदड़वेश साधना करते रहे इसके पश्चात गलता मेले में गुरू आज्ञा से गुदड़वेश त्याग कर साधना में रत हुए। अस समय इनके मन में वृंदावन दर्शन की इच्छा थी। गुरू की आज्ञा प्राप्त कर वृन्दावन की और चले। रास्ते में अचानक उनको संत दर्शन हुद और उन्होने मंत्र जाप की आज्ञा दी और अन्तध्यान हो गये। इस घटना से रामचरण जी अचंभित हुए और वृन्दावन का विचार त्याग वापस जयपुर आकर साधना करने लगे वहां उनको गुरू कृपाराम जी के दर्शन हुए। उन्होने रास्ते की घटना अपने गुरू से निवेदन की। गुरूदेव कृपाराम जी ने उन्हें राम नाम की साधना का आर्शीवाद दिया। इसके पश्चात कुछ समय तक जयपुर में साधना की। दो वर्ष जयपुर में साधना के पश्चात भीलवाड़ा गये वहां मायानन्द जी की बावडी को अपना साधना स्थल बनाया। उस काल में राजस्थान में मूर्ति पूजा व बाá आडम्बर का जोर था इनकी निवृŸि मार्ग की साधना से कई लोग रूष्ट थे। एक रात्रि को श्री रामचरण जी को विष दिया गया किन्तु उन पर कोई असर नहीं हुआ स्वामी जी ने भी व्रत ले लिया। विरोधियों ने एक भील को प्रलोभन देकर स्वामी को मरवाने का यत्न किया। भील तलवार लेकर जब साधना स्थल पर गया तो आसन पर स्वामी जी के दर्शन नहीं हुए वह भयभीत हो गया फिर उसे वहां अगिन पुंज के दर्शन हुए और उसमें स्वामी जी के दर्शन हुए। वह भयभीत होकर स्वामी जी के चरणों में गिर गया। स्वामी जी को साधना करते हुए भीलवाड़ा में कई वर्ष हो गये। गृहस्थ शिष्य विरक्त होने लगे। स्वामी जी के इस प्रयास को कई लोग सहन नहीं कर पाये औद उनके प्राण लेने का यत्न करने लगे। कुछ लोगों ने उदयपुर महाराणा से यह शिकायत की कि स्वामी रामचरण जी धर्म को नष्ट कर रहे हैं। उदयपुर महाराणा ने जानकारी हेतु एक अधिकारी स्वामी जी के पास भेजा इससे उनका मन उद्विग्न हो गया और वे भीलवाड़ा छोड़कर कुहाड़ा चले गये।लोगो ने रोकने की बहुत कोशिश की किन्तु उन्होने समझाकर लोगों को वापस भेज दिया। कुहाड़ा आकर वे साधनारत हो गये। इधर लोगों ने उदयपुर महाराणा को वास्तविकता से अवगत करवाया। महाराणा ने पश्चाताप किया और संतो के सम्मान में 300 पगड़ी व शाल भेंट की। लोगों के आग्रह पर पुन: भीलवाड़ा पधारे वहां उन्होंने साधना कर शब्द योग का ज्ञान प्राप्त किया।इसी बीच शाहपुरा के राजा ने उन्हें शाहपुरा पधारने का आमंत्रध दिया। भीलवाड़ा में संवत 1817 में आपने रामस्नेही सम्प्रदाय की स्थापना की। वहां रहते हुए उन्होंने अपनी वाणी की रचना की, अपने शिष्य रामचरण की इस साधना व सफलता से उनके गुरू

कृपाराम जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। [1] उन्होंने अणभै वाणी मंगवाकर स्वयं देखा उसे सुना और कहा कि यह संतोषी गृहस्थों का अमूल्य धन है। संवत 1826 में स्वामी जी शाहपुरा पधारे वहां के राजा व प्रजा ने आपका भव्य स्वागत किया। स्वामी जी ने अपनी साधना स्थली वहां श्मशान को बनाया। वहीं रहकर साधना करने लगे राज्य की और से वहां एक छतरी का निर्माण कराया गया स्वामी जी हर एक मानव को एक समान मानते थे। वे राजा रंक में भेद नहीं करते थे। शाहपुरा में आपके शिष्यों की संख्या 225 हो गई थी। इसके पश्चात स्वामी जी ने अपनी सम्पूर्ण जीवन साधना शाहपुरा में ही रहकर की। दीक्षा के बाद में, 12 वर्ष तक भकित साधना की चार चौकियां पार कर भीलवाड़ा में स्वामी जी की आध्यातिमक अनुभूतियां मुखरित हुई तथा अनुभव वाणी खुली, आपके सैकड़ो भक्त व शिष्य बनने लगे। सन 1761 में राम स्नेही भक्तों ने विचार कर भीलवाड़ा में सरकार से 12 बीघा पक्की भूमि खरीदकर राम – द्वारा भवन निर्माण करवाया। स्वामी जी तब भीलवाड़ा में विराज रहे थे तब सभी भक्तों ने धर्म प्रचार के उद्देश्य से एक प्रसिद्ध वार्षिक उत्सव फूल डोल, होली पर मनाने का विचार किया जो आज तक भी मनाया जाता है। स्वामी जी ने 78 वर्ष 2 माह 7 दिन की आयु में इहलीला का संवरण राम नाम अमृत का पान करते हुए बैसाख कृष्ण 5, गुरूवार, 5 अप्रैल 1788 में राम की आवाज करके ब्रáलीन हुए। लेकिन शरीर त्याग के पश्चात भी आपके होंठ हिलते रहे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि स्वामी जी महाराज राम नाम का स्मरण कर रहे हैं। राजस्थान वीरों की भूमि के साथ – साथ संतों की भूति भी रही है। इसी परम्परा में तत्कालिक परिसिथतियों के अनुकूल स्वामी रामचरण जी ने अपने आराध्य राम के नाम पर रामस्नही सम्प्रदाय की स्थापना की जो प्राणी मात्र से रमते राम सा स्नेह करते हैं। इसी भावना से ही उन्होंने सम्प्रदाय का नाम रामस्नेही रखा। उन्होंने अपने साधना अनुभवों का अमूल्य संकलन अणभै वाणी ग्रंथ में किया। जिसमें 36397 पद है। इस ग्रन्थ में दोहा, चन्द्रायण काव्य कवि, कण्डल्या राग रखता आदि है। इसमें 24 ग्रन्थों का संकलन है इसकी हस्तलिखित प्रति आज भी शाहपुरा धाम में सुरक्षित है। स्वामी रामचरण जी महाराज अपने काल के अद्वितीय संत हुए उन्होंने उस अराजक काल में एक नया संदेश देकर लोगो में उत्साह जागृत किया। जाति – पांति के भेद को मिटाकर सभी को राम मंत्र की दीक्षा दी।

स्वामी रामचरण जी महाराज ने 'जिज्ञासबोध' के चतुर्थ प्रकरण में 'राम' शब्द के दोनो वर्ण रा और म का रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा कि जैसे सूर्य और चंद्र ब्रह्मांड के दो नेत्र हैं वैसे ही वेद के दो नेत्र रकार और मकार है इन दोनों नेत्रों से ही ज्ञान का प्रकाश मिलता है। इसके बिना क्रिया कर्म साधन श्रम सब अंधे हैं। इसलिए 'निजबंदगी' में लीन होकर 'ब्रह्मशब्द' इक 'राम' का उच्चारण करना चाहिए

विचार-विमर्श

मध्यकाल में राजस्थान में भी भक्ति आन्दोलन हुआ था, जिसमें दादू, मीरा तथा रामस्नेही के सन्त आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी।

दादू : दादू एक महान सन्त थे। आचार्य क्षितिज, मोहन सेन, मोहसिन, फानी एवं विल्सन आदि विद्वानों का मानना है कि वे जाति से धुनिया मुसलमान थे, परन्तु दादू पंथी उनकी जाति के बारे में मौन हैं।

दादू का जन्म १५४४ ई० में हुआ था। उनका पालन पोषण लोदीराम नामक ब्राह्मण ने किया था। बचपन में उनकी शादी कर दी गई, परन्तु उनकी आध्यात्मिकता के क्षेत्र में बहुत रुचि थी, अत: उन्होंने विभिन्न धर्मों के आडम्बरों का खण्डण किया एवं जीवनपर्यन्त अपने विचारों का प्रचार करते रहे। उनके शिष्यों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। अन्त में १६०३ ई० में आमेर के पास नरायणा नामक स्थान पर उन्होंने देह को छोड़ दिया।

दादू के दार्शनिक विचार :

दादू ने अपने विचार काव्य के माध्यम से व्यक्त किये हैं।"दादूवाणी"एवं"दादूजी के दूहा"के माध्यम से हमें इनके विचारों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। उन्होंने अपने विचार सरल भाषा में प्रस्तुत किए हैं। उनका मानना है कि ईश्वर परब्रह्म है एवं माया से दूर है। वह सर्वशक्तिमान है तथा जीव उसी का रुप है, किन्तु वह माया में लिप्त रहता है, अत: उससे दूर हो जाता है। जीव कर्मों से बँधा हुआ है, पर ब्रह्मा कर्मों से मुक्त है। कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर जीव ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। इसके बाद आत्मा व परमात्मा के बारे में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

दादू के अनुसार माया ही आत्मा को परमात्मा से दूर ले जाती है। कंचन तथा कामिनी माया के प्रतीक हैं। उनका मानना था कि सृष्टि की उत्पत्ति पृथ्वी, जल, वायु, आकाश तथा ब्रह्म से हुई है। इनके अनुसार केवल ब्रह्म को छोड़कर शेष सभी मि है। दादू का मानना था कि यदि मनुष्य अपनी आत्मा को शुद्ध कर ले, तो वह इसी जीवन में मोक्ष प्राप्त कर सकता है। उन्होंने गुरु के महत्व पर बहुत बल दिया। उनका मानना था कि गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता तथा गुरु ही व्यक्ति को ब्रह्म भी बना सकता है। शाश्वत सत्य सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है। उनके शब्दों में ----

"दादू सत्गुरु ऐसा कीजिए, राम रस माता पार उतारे पलक में, दरसन का दाता।"

दादू के साधना के बारे में विचार :

दादू निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनके अनुसार अहं का परित्याग, संयम, नियम, साधु - संगति, हरि स्मरण एवं अनतध्र्यान आदि साधना के सच्चे साधन हैं। उनका मानना था कि अहंकार का परित्याग किये बिना ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता। मन की निर्मलता के लिए उन्होंने विरह को साधन बताया है। उनका मानना था कि साधुओं कीसंगति से व्यक्ति का मन ब्रह्म में लगा रहता है।

दादू का यह भी कहना था कि हरि स्मारक विचार के साथ - साथ आन्तरिक एवं मानसिक भी होना चाहिए। यदि हरि नाम जपते - जपते प्राण भी चले जाए, तो भी तप का तार नहीं टूटना चाहिए।

दादू ने कहा कि नाम माहात्म्य सुनना, स्मरण करना साधना की प्रथम अवस्था है। ऐसे जपना कि उसे दूसरे भी नहीं सुन सकें, यह दूसरी अवस्था है। हृदय में चिन्तन करना तीसरी अवस्था है। परन्तु जब रोम - रोम में चिन्तन व जाप होने लगता है, तो चौथी अवस्था आती है, यह जीव तथा ब्रह्म की एकता की अवस्था है।

डा० पेमाराम के अनुसार, "दादू ने बहिर्मुखी साधना के आडम्बर का खण्डण कर अन्तर्मुखी साधना पर बल दिया था।"[2]

दादू के सामाजिक विचार :

दादू ने समाज नें प्रचलित ढ़ोंग, पाखण्ड,आडम्बर, जात - पांत तथा वर्गभेद आदि बुराईयों का जोरदार खण्डण किया है। उन्होंने तीर्थ यात्रा को ढकोसला बताते हुए कहा है कि ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति के मन में निवास करता है, अत: तीर्थ स्थानों पर जाकर उसे ढूँढना एक ढ़कोसला मात्र है। उन्होंने कहा कि सिर

मुंडाकर, जटा बढ़ाकर, विविध प्रकार के वस्त्र धारण करने से ईश्वर प्राप्त नहीं होता। उनका कहना था कि मस्जिदमें जाना, नमाज पढ़ना एवं रोजे रखना भी व्यर्थ है। उन्होंने कहा कि हमारे शरीर में ही मंदिर तथा मस्जिद विद्यमान हैं, अत: हमें अन्त: करण की उपासना करनी चाहिए।

दादू विविध पूजा - पद्धतियों के विरोधी थे। उनके अनुसार ईश्वर एक है और उसके दरबार में मनुष्य - मनुष्य के बीच कोई अन्तर नहीं है। हिन्दू और मुसलमान का वर्ग भेद मानव निर्मित है, जिसका कोई महत्व नहीं है। सभी जीवात्माएँ एक ही ईश्वर से उत्पन्न होती हैं, अत: वे एक ही परिवार की इकाईयाँ हैं। सभी के शरीर में एक ही आत्मा है। इसीलिए दादू ने हिन्दू और मुसलमान के बाहरी आडम्बरों का खण्डण किया एवं दोनों को अन्त:करण की शुद्धि का उपदेश दिया। दादू विनमर्ता से अपनी बात कहते हैं और इनकी शैली सरल तथा स्पष्ट है। इसके विपरीत कबीर के कहने में थोड़ी उग्रता दिखाई देती है।

दादू का प्रभाव व देन :

"दादू जन्म - लीली परची"तथा"सन्त गुण सागर"नामक ग्रन्थों से पता चलता है कि दादू के शिष्यों में १५२ प्रधान शिष्य थे, जिनमें से १०० वीतरागी थे अर्थात् उन्होंने अपना एक भी शिष्य नहीं बनाया, जबकि शेष ५२ ने अपने - अपने स्तम्भों की स्थापना की। इस प्रकार गुरु - शिष्य की परम्परा आगे भी चलती रही। ये स्तम्भ ही"दादू पंथी सम्प्रदाय"के नाम से प्रसिद्ध हैं।

दादू पंथ साधु अविवाहित होते हैं, और दादू द्वारों में रहते हैं। वे किसी गृहस्थ के लड़के को अपना शिष्य बनाते हैं, जिससे उनके पंथ की परम्परा आगे बढ़ती रहती है। दादूपंथी तिलक नहीं लगाते हैं, गले में माला नहीं पहनते हैं, सिर पर चोटी नहीं रखते हैं और किसी मंदिर में जाकर पूजा नहीं करते हैं। वे अपने दादू द्वारों में दादूजी की वाणी नामक ग्रन्थ रखते हैं तथा उसका वाचन अर्चन करते हैं। दादूपंथियों में मृत्यु के बाद शव को न तो दफनाया जाता है और न ही जलाया जाता है, अपितु शव को चारपाई पर लिटाकर जंगल में रख दिया जाता है, ताकि पशु - पक्षी उससे अपना पेट भर सकें।

इस प्रकार दादू तथा उसके सम्प्रदाय ने १६वीं शताब्दी में राजस्थान में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों तथा धार्मिक आडम्बरों का खण्डण किया, जिससे नवजागृति उत्पन्न हुई। दादू ने अपने उपदेश जन भाषा में दिये।। उन्होंने"ढूँढाड़ी"भाषा का प्रयोग किया, जो भूतपूर्व जयपुर राज्य के जनसाधारण की बोलचाल की भाषा थी।

डॉ० दशरथ शर्मा ने अपनी पुस्तक"राजस्थान का इतिहास"में लिखा है,"दादू पंथ में प्रेम एक ऐसा धागा है, जिसमें गरीब और अमीर एक साथ बांधे जा सकते हैं और जिसकी एकसूत्रता विश्व - कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

रामस्नेही सम्प्रदाय :

सुप्रसिद्ध सन्त सन्तदास की शिष्य परम्परा में सन्त दरियाबजी तथा सन्त रामचरण जी हुए। सन्त रामचरण जी शाहपुरा की रामस्नेही शाखा के प्रवर्तक थे, जबकि सन्त दरियाबजी रैण के रामस्नेही शाखा के थे।

सन्त दरियाबजी :

इनका जन्म जैतारण में १६७६ ई० में हुआ था। इनके गुरु का नाम सन्तदास था। इन्होंने कठोर साधना करने के बाद अपने विचारों का प्रचार किया। उन्होंने गुरु को सर्वोपरि देवता मानते हुए कहा कि गुरु भक्ति के माध्यम से ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति के समस्त साधनों एवं कर्मकाण्डों में इन्होंने राम के नाम को जपना ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया तथा पुनर्जन्म के बन्धनों से मुक्ति पाने का सर्वश्रेष्ठ साधन माना।

उन्होंने राम शब्द में हिन्दू - मुस्लिम की समन्वय की भावना का प्रतीक बताया। उन्होंने कहा कि "रा"शब्द तो स्वयं भगवान राम का प्रतीक है, जबकि 'म' शब्द मुहम्मद साहब का प्रतीक है। उन्होंने कहा कि गृहस्थ जीवन जीने वाला व्यक्ति भी कपट रहित साधना करते हुए मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसके लिए गृहस्थ जीवन का त्याग करना आवश्यक नहीं है। दरियाबजी ने बताया है कि किस प्रकार व्यक्ति निरन्तर राम नाम का जप कर ब्रह्म में लीन हो सकता है।

सन्त दरियाबजी ने समाज में प्रचलित आडम्बरों, रुढियों एवं अंधविश्वासों का भी विरोध किया उनका मानना था कि तीर्थ यात्रा, स्नान, जप, तप, व्रत, उपवास तथा हाध में माला लेने मात्र से ब्रह्म को प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे मूर्ति पूजा तथा वर्ण पूजा के घोर विरोधी थे। उन्होंने कहा कि इन्द्रिय सुख दु:खदायी है, अत: लोगों को चाहिए कि वे राम नाम का स्मरण करते रहें। उनका मानना था कि वेद, पुराण आदि भ्रमित करने वाले हैं। इस प्रकार दरियाबजी ने राम भक्ती का अनुपम प्रचार किया।

सन्त रामचरण :

सन्त रामचरण शाहपुरा की रामस्नेही की शाखा के प्रवर्तक थे। उनका जन्म १७१९ ई० में हुआ था। पहले वे जयपुर नरेश के मन्त्री बने, परन्तु बाद में इन्होंने अचानक सन्यास ग्रहण कर लिया तथा सन्तदास के शिष्य महाराज कृपाराम को उन्होंने अपना गुरु बना लिया। इन्होंने कठोर साधना की और अन्त में शाहपुरा में बस गये। इन्होंने यहाँ पर मठ स्थापित किया तथा राज्य के विभिन्न भागों में रामद्वारे बनवाये। इस प्रकार वे अपने विचारों तथा राम नाम का प्रचार करते रहे।[3]

सन्त रामचरण ने भी मोक्ष प्राप्ति के लिए गुरु के महत्व पर अधिक बल दिया। उनके नाम को जपने से मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने सत्संग पर विशेष बल दिया। उनका मानना था कि जिस प्रकार गंगा के पानी में मिलने के बाद नालों का गन्दा पानी भी पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार मोहमाया में लिप्तव्यक्ति भी साधुओं की संगति से निर्मल हो जाता है।

रामचरण जी ने भी मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्रा, बहुदेवोपासना कन्या विक्रय, हिन्दू - मुस्लिम भेदभाव तथा साधुओं का कपटाचरण आदि बातों का जोरदार विरोध किया। उनका मानना था कि मंदिर तथा मस्जिद दोनों भ्रम हैं तथा पूजा - पाठ, नमाज एवं तीर्थ यात्रा आदि ढोंग हैं, अर्थात् धार्मिक आडम्बर हैं। वे भांग, तम्बाकू एवं शराब के सेवन तथा मांस - भक्षण के भी विरोधी थे।

रामस्नेही सन्तों का प्रभाव :

रामस्नेही सन्तों ने राम - नाम के पावन मन्त्र का प्रचार करते हुए लोगों को राम की भक्ति का सन्देश पहुँचाया। उनकी शिष्य परम्परा के विकास के साथ - साथ स्थान - स्थान पर रामद्वारों की स्थापना होती गई। रामस्नेही साधु इन्हीं रामद्वारों में निवास करते हैं तथा राम नाम को जपते रहते हैं। वे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। हिन्दू परिवार के युवकों तथा बच्चों को दीक्षा देकर शिष्य परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। ये मिट्टी का बर्तन में भोजन करते हैं और लकड़ी के कमण्डल से पानी पीते हैं।

राम - स्नेही मूर्ति पूजा नहीं करते हैं, अपितु गुरुद्वारे में अपने गुरु का चित्र अवश्य रखते हैं और प्रात:काल तथा सायंकाल को गुरुवाणी का पाठ करते हैं। रामचरण सम्प्रदाय में धार्मिक निष्ठा, अनुशासन, सत्य निष्ठा तथा नैतिक

आचरण पर विशेष बल दिया जाता है। वे मांस - भक्षण नहीं करते हैं, सिर्फ शाकाहारी भोजन करते हैं। गुरुवाणी को बड़े प्रेम से गाया जाता है। इनकी शाखाएँ अलग - अलग होते हुए भी इनका मूल स्रोत एक समान है। अत: सभी शाखाओं, व्यवस्था तथा आचार - व्यवहार में एकरुपता दिखाई देती है।

परिणाम

राजस्थान विशेषकर इसका नागौर जनपद शुरु से संतों व भक्तों की पावनभूमि के रुप में जाना जाता रहा है। इन संतों ने विविध संप्रदायों को अस्तित्व में लाया। इन संप्रदायों में रामस्नेही संप्रदाय बहुत बड़ा अवदान रहा है।

रामस्नेही संप्रदाय के प्रवर्त्तक सन्त साहब थे। उनका प्रादुर्भाव १८ वीं शताब्दी में हुआ। साधारण जन को लोकभाषा में धर्म के मर्म की बात समझाकर, एक सुत्र में पिरोने में इस संप्रदाय से जुडे लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन संतों ने हिंदू- मुसलमान, जैन- वैष्णव, द्विज- शूद्र, सगुण-निर्गुण, भक्ति व योग के द्वन्द्व को समाप्त कर एक ऐसे समन्वित सरल मानवीय धर्म की प्रतिष्ठापना की जो सबके लिए सुकर एवं ग्राह्य था। आगे चलकर मानवीय मूल्यों से सम्पन्न इसी धर्म को "रामस्नेही संप्रदाय' की संज्ञा से अभिहित किया गया।

रेण- रामस्नेही संप्रदाय में शुरु से ही गुरु- शिष्य की परंपरा चलती आयी है। इनका सिद्धांत संत दरियाजी के सिद्धांतों पर आधारित उनके अनुयायियों ने इनका प्रचार- प्रसार देश के विभिन्न भागों में निरंतर करते रहे। इस संप्रदाय के प्रमुख संतों का उल्लेख इस प्रकार है -

दरियाव जी / दरिया साहब

नागौर जिले में रामस्नेही संप्रदाय की परंपरा संत दरियावजी से आरंभ होती है। इनका जन्म जोधपुर राज्य के जैतारण गाँव में वि.सं. १७३३ (ई. १६७६) की भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, बुधवार को हुआ था। इनके पिता का नाम मानसा तथा माता का नाम गीगा था। ये पठान धुनिया थे।

मुरधर देस भरतखण्ड मांई, जैतारण एक गाँव कहाई।
जात पठाण रहत दोय भाई, फतेह मानसा नाम कहाई।।

-- दरियाव महाराज के जन्म चरण की परची

पिता मानसा सही, माता गीगा सो कहिये।
बण सुत को घर बुदम जात धुणियां जो लहिये।।

-- दरियाव महाराज की जन्मलीला
(ह.ग्रंथ, रा.प्रा.वि.प्रतिष्ठान, जोधपुर)

खुद दरिया साहब ने अपनी बाणी में कहा है -

जो धुनियां तो भी मैं राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तो हो सिरताज हमारा।।

-- दरिया बाणी पद

प्रेमदास की कृपा से दरिया के सारे जंजाल मिट गये --

सतगुरु दाता मुक्ति का दरिया प्रेमदयाल।
किरपा कर चरनों लिया मेट्या सकल जंजाल।।

-- दरिया बाणी

दरिया अपने गुरु में बड़ी श्रद्धा रखते थे और गुरु भी सदैव कृपा की वर्षा द्वारा दरिया के अन्त:करण का सेचन करते रहते थे। कहा जाता है कि एक बार गुरु प्रेमदास को रसोई (भोजन) देनी थी, परंतु दरिया निर्धन थे, अत: चिंतित हुए। रात को जब दरिया सोये हुए थे, तब भगवान ने हुंडी लिखकर उनके सिरहाने रख दी, जिससे रुपये लेकर दरिया ने गुरु को रसोई (भोजन) दी। इसका उल्लेख दादूपंथी संत ब्रह्मदासजी ने अपनी भक्तमाल में किया है --

सिख दरिया प्रेम सतगुर, दयण रसोई द्वार।
सिराणे गा मेल सूतां, हुंडी सिरजणहार, तो
किरतार जी किरतान, कारज सारिया किरतार

-- भक्तमाल चतुर्थ, छ: २४

दरिया ने मेड़ता व रेण के बीच पड़ने वाले ""खेजड़ा" नामक स्थान का साधना स्थली के रुप में चुना और साधना की परिपक्वता के पश्चात् लोकहितार्थ अलग- अलग स्थानों में घूमकर अपने अनुभवों एवं उपदेशों का प्रचार- प्रसार किया। इस दौरान इनके अनेक शिष्य बने। राम- नाम का प्रचार करते हुए राम के स्नेही दरिया ने सन् १७५८ ई.(वि.सं. १८१५) मार्गशीर्ष शुक्ला १५ को रेण में ही इनका देहांत हो गया। रेण में आज भी संत दरियावजी की संगमरमर की समाधि बनी हुई है, जहाँ प्रति वर्ष चैत्र सुदि पूर्णिमा को मेला लगता है।

गुरु दरिया द्वारा समय- समय पर दिये गये उपदेश एवं उनकी साधनात्मक अनुभूतिमय कविता का शिष्यों ने संकलित किया, यही ""वाणी" कहलाती है। अपनी वाणी में उन्होंने बोल- चाल के शब्दों का ही प्रयोग किया है। यों फारसी- अरबी शब्दों (जैसे- रहीम, हवाल, दरद, हुकुम, सुलतान, गलतान, गुजरान, शैतान, खबर, ,ख्वार, दस्त, दीवाना, मौल, मंजिल, हाजिर, दरबार, दरवेस आदि) का भी प्रयोग हुआ है, पर ये सब जनसाधारण में प्रचलित शब्द ही हैं, इसलिए बोधगम्य है। चूंकि उनकी साधना व प्रचार क्षेत्र राजस्थान ही रहा, अत: उनकी वाणी में राजस्थानी शब्दों का बाहुल्य है।

कहा जाता है कि इनकी ""वाणी"दस हजार (१००००) साखी व पदों के परिमाण में थी, परंतु स्वयं दरियासाहब ने उस वाणी- संग्रह को जल में बहा दिया। इनके संभावित कारण में माने जाते हैं -

१. अब दरिया उस असामान्य आध्यात्मिक भूमिका को स्पर्श कर चुके थे, जहाँ कविता की यश कामना का प्रवेश वर्जित है।

२. उनके सामने ही कबीर व दादू आदि निर्गुण संतों की बाणियों ने पूजा का रुप धारण कर लिया था, जिससे उसका मूल उद्देश्य ही अलग- थलग पड़ गया था।

३. दरिया उस ब्रह्म की ज्योति का साक्षात्कार कर चुके थे, जिसके दर्शन के पश्चात् कथनी व करनी झूठी लगने लगती है, धुआं जैसे प्रतीत होने लगती है। स्वयं दरिया की वाणी है -

अनुभव झूठी थोथरी निर्गुण सच्चा नाम।
परम जोत परचे भई तो धुआं से क्या काम।।

फिर भी दरिया साहब के निर्वाण के पश्चात् श्रद्धालु अनुयायियों ने उनकी यंत्र-तंत्र विकीर्ण साखियों व पदों का संकलन किया, जो लगभग ७०० साखी व पदों के रुप में प्राप्त हे।[4]

उनके भक्तिभाव में अनेक रचनाएँ हुई, जो अपने- आप में एक समृद्ध साहित्यिक प्रतिभा को दर्शाता है।

कोई कंथ कबीर का, दादू का महाराज
सब संतन का बालमा दरिया का सरताज।

दरिया के साहिब राम

राम- सुमिरन

दरिया ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए राम- सुमिरन को महत्व दिया है। राम- स्मरण से ही कर्म व भ्रम का विनाश संभव है। अतः अन्य सभी आशाओं का परित्याग कर केवल रामस्मरण पर बल देना चाहिए --

""दरिया सुमिरै राम को दूजी आस निवारि।"

राम- स्मरण करने वाला ही श्रेष्ठ है। जिस घट (शरीर, हृदय) में राम- स्मरण नहीं होता, उसे दरिया घट नहीं ""मरघट" कहते हैं।

सब ग्रंथों का अर्थ (प्रयोजन) और सब बातों की एक बात है -- ""राम- सुमिरन"

सकल ग्रंथ का अर्थ है, सकल बात की बात।
दरिया सुमिरन राम का, कर लीजै दिन रात।।

-- सुमिरन का अंग

दरिया साहब की मान्यता है कि सब धर्मों का मूल राम- नाम है और रामस्मरण के अभाव में चौरासी लाख योनियों में बार- बार भटकना पड़ेगा, अतः प्रेम एवं भक्तिसंयुत हृदय से राम का सुमिरन करते रहना चाहिए, लेकिन यह रामस्मरण भी गुरु द्वारा निर्देशित विधि- विशेष से संपन्न होना चाहिए। केवल मुख से राम- राम करने से राम प्राप्ति नहीं हो सकती। उस राम- शब्द यानि नाद का प्रकाशित होना अनिवार्य है, तभी ""ब्रह्म परचै" संभव हे। शब्द- सूरति का योग ही ब्रह्म का साक्षात्कार है, निर्वाण है, जिसे सदुरु सुलभ बनाता है। सुरति यानि चित्तवृति का राम शब्द में अबोध रुप से समाहित होना ही सुरति- शब्द योग है।

इसलिए जब तक शरीर में सांस चल रहा है, तब तक राम- स्मरण कर लेना चाहिए, इस अवसर को व्यर्थ नहीं खोना है, क्योंकि यह शरीर तो मिट्टी के कच्चे ""करवा" की तरह है, जिसके विनष्ट होने में कोई देर नहीं लगती --

दरिया काया कारवी मौसर है दिन चारि।
जब लग सांस शरीर में तब लग राम संभारि।।

-- सुमिरन का अंग

राम- सुमिरन में ही मनुष्य देह की सार्थकता है, वरन् पशु व मनुष्य में अंतर ही क्या!

राम नाम नहीं हिरदै धरा, जैसे पसुवा तेसै नरा।
जन दरिया जिन राम न ध्याया, पसुआ ही ज्यों जनम गंवाया।।

-- दरिया वाणी पद

गुरु प्रदत्त निरंतर राम- स्मरण की साधना से धीरे- धीरे एक स्थिति ऐसी आती है, जिसमें ""राम" शब्द भी लोप हो जाता है, केवल ररंकार ध्वनि ही शेष रहती है। क्षर अक्षर में परिवर्तित हो जाता है, यह ध्वनि ही निरति है। यही ""पर- भाव" है और इसी ""पर- भाव" में भाव अर्थात् सुरति का लय हो जाता है अर्थात भाव व ""पर- भाव" परस्पर मिलकर एकाकार हो जाते हैं, यही निर्वाण है, यही समाधि है --

एक एक तो ध्याय कर, एक एक आराध।
एक- एक से मिल रहा, जाका नाम समाध।।

-- ब्रह्म परचै का अंग

यही सगुण का निर्गुण में विलय है, यही संतों का सुरति- निरति परिचय है और चौथे पद (निर्वाण) में निवास की स्थिति है। यही जीव का शिव से मिलन है, आत्मा का परमात्मा से परिचय है, यही वेदान्तियों की त्रिपुटी से रहित निर्विकल्प समाधि है। यहाँ सुख- दुख, राग- द्वेष, चंद- सूर, पानी- पावक आदि किसी प्रकार के द्वन्द्व का अस्तित्व नहीं। यही संतों का निज घर में प्रवेश होना है, यही अलख ब्रह्म की उपलब्धि है, यही बिछुड़े जीव का अपने मूल उद्गम (जात) से मिलन है, यही बूंद का समुद्र में विलीनीकरण है, यही अनंत जन्मों की बिछुड़ी मछली का सागर में समाना है। इस सुरत- निरति की एकाकारिता से ही जन्म- मरण का संकट सदा- सदा के लिए मिट जाता है। यही सुरति- निरति परिचय संत दरिया का साधन भी है और साध्य भी। परंतु इस समाधि की स्थिति की प्राप्त करने के लिए प्रक्रिया- विशेष से गुजरना पड़ता है। वह प्रक्रिया- विधि- सद्गुरु सिखलाता है, इसलिए संत- मत में सद्गुरु की महत्ता स्वीकार की गई है।

इस प्रक्रिया में गुरु- प्रदत्त ""राम" शब्द की स्थिति सबसे पहले रसना में, फिर कण्ठ में , कण्ठ से हृदय तथा हृदय से नाभि में होती है। नाभि में शब्द- परिचय के साथ सारे विवादों का निराकरण भी शुरु हो गया है और प्रेम की किरणे प्रस्फुटिक होने लगती हें। इसलिए संतों द्वारा नाभि का स्मरण अति उत्तम कहा गया है। नाभि से शब्द गुह्यद्वार में प्रवेश करता हुआ मेरुदण्डकी २१ मणियों का छेदन कर (औघट घट लांघ) सुषुम्ना (बंकनाल) के रास्ते ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता हुआ त्रिकुटी के संधिस्थल पर पहुँच जाता है। यहाँ अनादिदेव का स्पर्श होता है और उसके साथ ही सभी वाद- विवादों का अंत हो जाता है। यहाँ निरंतर अमृत झरता रहता है। इस अमृत के मधुर- पान से अनुभव ज्ञान उत्पन्न होता है। यहाँ सुख की सरिता का निरंतर प्रवाह प्रवहमान होता रहता है। परंतु दरिया का प्राप्य इस सुखमय त्रिकुटी प्रदेश से भी श्रेष्ठ है, क्योंति दरिया का मानना है --

दरिया त्रिकुटी महल में, भई उदासी मोय।[5]
जहाँ सुख है तहं दुख सही, रवि जहं रजनी होय।।

-- नाद परचै का अंग

यद्यपि त्रिकुटी तक पहुँचना भी बिरले संतों का काम है, फिर भी निर्वाण अर्थात् ब्रह्मपद तो उससे और आगे की वस्तु है --

दरिया त्रिकुटी हद लग, कोई पहुँचे संत सयान।
आगे अनहद ब्रह्म है, निराधार निर्बान।।

निर्वाण को प्राप्त करने हेतु सुन्न- समाधि की आवश्यकता है और शून्य समाधि (निर्विकल्प समाधि) के लिए सुरति को उलट कर केवल ब्रह्म की आराधना में लगाना पड़ता है, अर्थात् उन्मनी अवस्था प्राप्त करनी पड़ती है --

सुरत उलट आठों पहर, करत ब्रह्म आराध।
दरिया तब ही देखिये, लागी सुन्न समाध।।

भक्ति की महत्ता
दरिया का योग भक्ति का प्राबल्य है। इसीलिये तो उनकी वाणी में एक भक्त की सी विनम्रता है और भक्ति की याचना भी --

जो धुनिया तो भी मैं राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तो हो सिरताज हमारा।
मैं नांही मेहनत का लोभी, बख्सो मौज भक्ति निज पाऊँ।।

-- दरिया बाणी पद

इनकी रचना में एक भक्त का सा तीव्र विरह है, तड़प है, मिलन की तालाबेली है, बिछड़न का दर्द है --

बिरहन पिव के कारण ढूंढन वन खण्ड जाय।
नित बीती पिव ना मिल्या दरद रहा लिपटाय।।
बिरहन का धर बिरह में , ता घट लोहु न माँस।।
अपने साहिब कारण सिसके सांसी सांस।।

-- बिरह का अंग

भक्त दरिया की कोई इच्छा नहीं, उसकी इच्छा धणी के हुकुम की अनुगामिनी है --

मच्छी पंछी साध का दरिया मारग नांहि।
इच्छा चालै आपणी हुकुम धणी के मांहि।।

-- उपदेश का अंग

भक्त व भगवान् का संबंध दासी- स्वामी का संबंध बताते हुए दरिया, स्वामी की आज्ञा को ही शिरोधार्य मानता है --

साहिब में राम हैं मैं उनकी दासी।
जो बान्या सो बन रहा आज्ञा अबिनासी।।

-- दिरया बाणी पद

दरिया ने तो स्पष्टतः योग को पिपीलिका- मार्ग की संज्ञा देकर उसकी कष्टसाध्यता के विरुद्ध भक्ति को विहंगम- मार्ग बतलाकर उसकी सहजता पर बल दिया है --

सांख योग पपील गति विघन पड़ै बहु आय।
बाबल लागै गिर पड़ै मंजिल न पहुँचे जाय।।
भक्तिसार बिहंग गति जहं इच्छा तहं जाय।
श्री सतगुर इच्छा करैं बिघन न ब्यापै ताय।।

सतगुरु की आवश्यकता

दरिया साहब ने भी कबीर, दादू आदि निर्गुण मार्गी संतों की तरह आत्मसाक्षात्कार या परम- पद की प्राप्ति के लिए सदगुरु की ही मुक्ति का दाता बतलाया है।

उनकी मान्यता है कि सतगुरु ही हरि की भक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा शिष्य में पड़े संस्कार- रुप बीज को अंकुरित कर उसे पल्लवित एवं पुष्पित करते हैं --

""सतगुरु दाता मुक्ति का दरिया प्रेम दयाल।"

-- सतगुरु का अंग

दरिया का मान्यता है कि गुरु प्रदत्त राम- शब्द तथा ज्ञान द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति संभव है। शास्त्रों के पठन तथा श्रवण से प्राप्त ज्ञान द्वारा आत्म- साक्षात्कार संभव नहीं, क्योंकि शास्त्र द्वारा प्राप्त ज्ञान वैसा ही निस्सार एवं प्रयोजतनहीन है, जैसा हाथी के मुँह से अलग हुआ दाँत। हाथी का दाँत जब तक हाथी के मुंह से स्वाभाविक रुप में स्थित है, तभी तक वह शक्ति व बलसंयुत है और किसी गढ़ अथवा पौल (दरवाजा) को तोड़ने में सक्षम है, टूटकर मुँह से अलग होने पर निस्सार है।

दाँत रहे हस्ती बिना, तो पौल न टूटे कोय।
कै कर धारे कामिनी कै खैलारां होय।।

-- साध का अंग

समाज संबंधी दायित्व

दरिया साहब सामाजिक एक रुपता में विश्वास करते थे। उन्होंने एक जाति- वर्ण व वर्ण- भेद रहित समाज की कल्पना की थी। उनके दरबार में कोई अछूत नहीं था, सब एक से थे। उनके विचार बिल्कुल सरल परंतु प्रभावी थे।

दरिया के विचार में अभक्त तो निंदनीय है ही, परंतु भगवद्भक्त भी वहीं बंदनीय है, जो सदाचार के गुणों की अनुपालन के साथ भगवद्भक्ति करता है -

ररंकार मुख ऊचरै पालै सील संतोष।
दरिया जिनको धिन्न है, सदा रहे निर्दोष।।

-- मिश्रित साखी

दरिया का उपास्य राम, निर्गुण, निराकार, निरंजन, अनादि एवं अंतर में स्थित परब्रह्म परमेश्वार है। ऐसे राम के लिए कहीं बाहर भटकने, तीर्थाटन करने व बाह्याडम्बर करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पवित्रीकृत मन की अंतर्मुखी वृत्ति द्वारा अपने हृत्प्रदेश में ही उसके दर्शन किये जा सकते हैं --

दुनिया भरम भूल बौराई।
आतम राम सकल घट भीतर जाकी सुध न पाई।
मथुरा कासी जाय द्वारिका अड़सठ तीरथ न्हावैं।
सतगुर बिन सोजी नहीं कोई फिर फिर गोता खावै।
चेतन मूरत जड़ को सेवै बड़ा थूज मत गैला।
देह आचार कियें काहा होई भीतर है मन मैला।।
जप तप संजम काया कसनी सांख जोग ब्रत दान।
या ते नहीं ब्रह्म से मैला गुन अरु करम बंधाना।।

दरिया के यहाँ मजहब के काल्पनिक भेद के लिए कोई अवकाश नहीं --

ररा तो रब्ब आप है ममा मोहम्मद जान।
दोय हरफ के मायने सब ही बेद कुरान।।

-- मिश्रित साखी

दरिया की साधना- पद्धति में बाह्य- साधनों व बाह्याडम्बरों का सर्वथा अभाव है, उनकी उपासना, पूजा व आरती मंदिर में नहीं होती, घट (हृदय) के भीतर होती है --

तन देवल बिच आतम पूजा, देव निरंजन और न दूजा।
दीपक ज्ञान पाँच कर बाती, धूप ध्यान खेवों दिनराती।
अनहद झालर शब्द अखंडा निसदिन सेव करै मन पण्डा।।

-- दरिया कृत आरती

दरिया के विचार में बाह्य आडम्बर या भेष परमात्मा- प्राप्ति के नहीं, आजीविका के साधन है -- ""दरिया भेष विचारिये, खैर मैर की छौड़।"

परमात्म- प्राप्ति के लिए कर्म- विरत या संन्यस्त होने की कोई अनिवार्यता नहीं, वह तो संसार में ""स्वकर्मण्यभिरतः" होते हुए भी की जा सकती है। दरिया के विचार में तो गृही और साधु दोनों के लिए उत्तम रीति भी यही है --

हाथ काम मुख राम है, हिरदै सांची प्रीति।
जन दरिया गृह साध की याही उत्तम रीति।।

-- सांच का अंग

इस प्रकार दरिया ने व्यक्ति की वृकिंद्धगता वित्तेषणा के शमनार्थ, माया धन की अस्थिरता, शरीर की नश्वरता तथा कराल काल की विकरालता दिखाकर संग्रह की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के बहाने परोक्ष रुप से सामाजिक समानता लाने का ही प्रयास किया है --

जगत जगत कर जोड़ ही दरिया हित चित लाय।
माया संग न चालही जावे नर छिटकाय।।
सुई डोरा साह का सुरग सिधाया नांह।
जन दरिया माया यहू रही यहां की यांह।।

तथा

मुसलमान हिंदू काहा षट दर्शन रंक राव।
जन दरिया निज नाम बिन सब पर जम का डाव।
मरना है रहना नहीं, या में फेर न सार।
जन दरिया भय मानकर अपना राम संभार।।
तीन लोक चौदह भुवन राव रंक सुलतान।
दरिया बंचे को नहीं सब जंवरे को खान।।

-- सुमिरन का अंग

वैकल्पिक अवगुणों के विनाश एवं सद्गुणों के विकास से ही समाज में परिवर्तन संभव है, अतः दरिया ने सदाचरण एवं चारित्रिक मूल्यों पर बल देकर सत्संगति व गुणोपेत सज्जनों की जो प्रशंसा की है, उसके पीछे उनकी मूल्यवान समाज रचना की भावना ही काम करती दिखाई दे रही है -

दरिया लच्छन साध का क्या गृही क्या भेष।
निहकपटी निपंख रहै, बाहिर भीतर एक।।
बिक्ख छुडावै चाह कर अमृत देवैं हाथ।
जन दरिया नित कीजिये उन संतन को साथ।।
दरिया संगत साध की सहजै पलटै बंस।
कीट छांड मुक्ता चुगै, होय काग से हंस।।
दरिया संगत साध की कलविष नासै धोय।
कपटी की संगत कियां आपहु कपटी होय।।

दरिया साहब का नारी के प्रति उदार और मानवीय दृष्टिकोण रहा है। उनके विचार में नारी समाज की महत्वपूर्ण इकाई है, उसे गर्हित एवं निंदनीय बताकर श्रेष्ठ समाज की कल्पना करना बेमानी है। नारी तो वस्तुतः ममता, त्याग व स्नेह की प्रतिमूर्ति है --

नारी जननी जगत की पाल पोष दे पोस।
मूरख राम बिसारि कै ताहि लगावै दौस।।
नारी आवै प्रीतिकर सतगुरु परसे आण।
जन दरिया उपदेस दै मांय बहन धी जाण।।

संत दरिया के इन निष्पक्ष व्यवहार एवं लोक हितपरक उपदेशों से प्रभावित होकर इनके अनेक शिष्य बने, जिन्होंने राजस्थान के विभिन्न नगरों व कस्बों में रामस्नेही- पंथ का प्रचार व प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। फलस्वरुप यह धर्म दरिया साहब के समय ही समग्र मारवाड़ में प्रचारित हो चुका था और दरिया साहब के निर्वाण के बाद भी उनकी शिष्यपरंपरा व अनुयायियों में वृद्धि होती गयी। परिणामतः इस शाखा के रामद्वारे राजस्थान- डेह, चाडी, भोजास, फिडोद, सीलगाँव, तालनपुर, बिराईरामचौकी, रियां बड़ी, जाटावास, पाटवा, भैरुन्दा, पीसांग, पुष्कर, अजमेर, उदयपुर, नाथद्वारा, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, मण्डोर (जोधपुर), फलौदी, फतेहपुर (सीकर), बाड़मेर जसोल आदि में तथा राजस्थान के बाहर मालवा- इंदौर, उज्जैन, देवास, धार, झींकर, भाणपुर, महाराष्ट्र- यवतमाल, धानौड़ी, अमरवती, धामण गाँव, आकोल में, उत्तर- प्रदेश- रिछोला (पीलीभीत) तथा दिल्ली में स्थापित हुए।

दरिया साहब के शिष्यों की संख्या ७२ बतलाई गई है, जिनमें अधिकांश शिष्य नागौर जनपद के ही हैं। शिष्यों में आठ प्रमुख है --
१.किसनदास टांकला,
२. सुखराम मेड़ता,
३. पूरणदास रेण,
४. नानकदास कुचेरा,
५. चतुरदास रेण,
६. हरखाराम नागौर,
७. टेमदास डीडवाना,
८. मनसाराम सांजू

इन आठ प्रमुख शिष्यों में भी चार शिष्य अतिप्रसिद्ध हुए --

किसनदास सुखराम उजागर पूरण नानकदास।
सिष चारों प्रगट दरिया के करी भक्ति परकास।।

-- परमदास- पद

दरिया साहब के इन शिष्यों ने उनके विचारों को समाज में व्यापकता से फैलाया। साथ- ही- साथ उनका साहित्यसृजन में भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। इन शिष्यों तथा इनके द्वारा रचित साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है --

किसनदास

किसनदास दरिया साहब के प्रमुख शिष्यों में से एक हैं। इनका जन्म वि.सं. १७४६ माघ शुक्ला ५ को हुआ। इनके पिता का नाम दासाराम तथा माता का नाम महीदेवी था। ये मेघवंशी (मेघवाल) थे। इनकी जन्म भूमि व साधना स्थली टांकला (नागौर) थी। ये बहुत ही त्यागी, संतोषी तथा कोमल प्रवृत्ति के संत माने जाते थे।

कुछ वर्ष तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने के पश्चात् इन्होंने वि.१७७३ वैशाख शुक्ल ११ को दरिया साहब से दीक्षा ली। इनके २१ शिष्य थे। खेड़ापा के संत दयालुदास ने अपनी भक्तमाल में इनके आत्मद्रष्टा १३ शिष्यों का जिक्र किया है, जिसके नाम हैं -

१. हेमदास, २. खेतसी, ३.गोरधनदास, ४. हरिदास (चाडी), ५. मेघोदास (चाडी), ६. हरकिशन ७. बुधाराम, ८. लाडूराम, ९. भैरुदास, १०. सांवलदास, ११. टीकूदास, १२. शोभाराम, १३. दूधाराम।

कई पीढियों तक यह शिष्य- परंपरा चलती रही।

संत दयालुदास ने किसनदास के बारे में लिखा है कि ये संसार में रहते हुए भी जल में कमल की तरह निर्लिप्त थे तथा घट में ही अघटा (निराकार परमात्मा) का प्रकाश देखने वाले सिद्ध पुरुष थे --

भगत अंश परगट भए, किसनदास महाराज धिन।
पदम गुलाब स फूल, जनम जग जल सूं न्यारा।
सीपां आस आकास, समंद अप मिलै न खारा।।
प्रगट रामप्रताप, अघट घट भया प्रकासा।
अनुभव अगम उदोत, ब्रह्म परचे तत भासा।।
मारुधर पावन करी, गाँव टूंकले बास जन।
भगत अंश परगट भए, किसनदास महाराज धिन।।

-- भक्तमाल/ छंद ४३७

किसनदास की रचना का एक उदाहरण दिया जा रहा है -

ऐसे जन दरियावजी, किसना मिलिया मोहि।।१।।
बाणी कर काहाणी कही, भगति पिछाणी नांहि।
किसना गुरु बिन ले चल्या स्वारथ नरकां मांहि।।२।।
किसना जग फूल्यों फिरै झूठा सुख की आस।
ऐसों जग में जीवणों ज्यूं पाणी मांहि पतास।।३।।
बेग बुढापो आवसी सुध- बुध जासी छूट।
किसनदास काया नगर जम ले जासी लूट।।४।।
दिवस गमायो भटकतां रात गमाई सोय।
किसनदास इस जीव को भलो कहां से होय।।५।।
कुसंग कदै न कीजिये संत कहत है टेर।
जैसे संगत काग की उड़ती मरी बटेर।।६।।
उज्जल चित उज्जल दसा, मुख का इमृत बैण।
किसनदास वे नित मिलो, रामसनेही सैण।।७।।
दया धरम संतोष सत सील सबूरी सार।
किसनदास या दास गति सहजां मोख दुवार।।८।।
निसरया किस कारणे, करता है, क्या काम।
घर का हुआ न घाट का, धोबी हंदा स्वान।।९।।

इन बाणी साहित्य श्लोक परिमाण लगभग ४००० है। जिनमें ग्रंथ १४, चौपाई ९१४, साखी ६६४, कवित्त १४, चंद्रायण ११, कुण्डलिया १५, हरजस २२, आरती २ हैं। विक्रम सं. १८२५ आषाढ़ ७ को टांकला में इनका निधन हो गया।

सुखराम

सुखराम दरिया साहब के प्रमुख शिष्यों में हैं। इनका जन्म वि.सं. १७५८ भाद्रपद शुक्ला ७ सोमवार को हरसौर में हुआ। ये जाति से लुहार थे और चाकू- छुरी आदि की शाण (धार) बनाने का काम करते थे --

""जन सुखराम जात लौहारा, लिव खुरसांण लगाया।"

-- किसनदास की भक्तमाल

इनकी साधना एवं समाधि स्थल मेड़ता रही है। ये अपने समय के श्रेष्ठ साधक थे। इनकी साधना का परिचय देते हुए संत दयालुदास ने भक्तमाल में इनका उल्लेख इस प्रकार किया है --

गुरु दरियाशाह परस पद सुखराम पीयूष पियपा।
मन मजमस मिट जहर, व्रिम्रल नख चख मुख धारा।।
आरत विरह अदोत, लिगन प्रिय प्राण पियारा।
आसण अचल सधीर, सदा सिंवरण दिशा सूरा।
लिव खुरसांण लगाय, कांल क्रम कीना दूरा।।
जीव सीव मिल अमर पद, जन चरण शरण जीवक जीया।
गुरु दरियाशाह परस, पद सुखराम राम पीयुष पिया।।

-- भक्तमाल, छंद ४३८

कहा जाता है कि इन्होंने मारवाड़ नरेश बख्तसिंह को असाध्य रोग से मुक्त किया था। इनका देहावसान वि. १८२३ फाल्गुन शुक्ल ११ को मेड़ता में हुआ।

इनका बाणी साहित्य- साखी, शब्द, छंद, रेखता में १७ ग्रंथ, ५५ अंग, ७७ चंद्रायण, कुण्डलिया, छप्पय ३३, हरजस ३८, आरती २। कुल वाणी श्लोक परिणाम ३००० हैं। इनकी रचनाएँ भी उच्च कोटि की थी --

राजा गिणे न बादशाह बूढो गिणे न बात।
सुखिया इण संसार में बड़ो कसाई काल।।१।।
जाया सो ही जायगा सभी काल के गाल।
सुखरामा तिहूं काल में करे हाल बेहाल।।२।।
धोला धणी पठाईया मत कर काला केस।
सुखिया साहिब भेजिया भरण तणा संदेश।।३।।
राजा राणा पातस्या कहा रंक कहा सेट।
सुखिया इण संसार के लारे लागो पेट।।४।।
पेट ने हो तो रामजी काहे करत कलाप।
इकन्त जाय सुखराम कह करते तेरो जाप।।५।।
तन मद धन मद पृथ्वी लागे पाय।
जम की झाट बुरी है राजा सब मद उतर जाय।।६।।

निष्कर्ष

जीव और परमात्मा के बीच जो दूरी है वह कई जन्मो से है, कई कल्पो से है, सतगुरू हमे मंत्र बताकर उपासना बताकर वह दूरी मिटाते है।

ईश्वर का महाप्रसाद है मानव जीवन।

बिना गुरू के कर्म नही कट सकते हैं।

मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है।

राम नाम से ही आत्मा का पोषण होता है।

प्राणिमात्र में परमात्मा को देखना चाहिए।

हमारी चिन्तनधारा आध्यात्मिकता की ओर होनी चाहिए।

भगवान का परिचय सतगुरू देते हैं।

राम नाम स्मरण से करोड़ों पाप कर्म जलकर नष्ट हो जाते हैं।

संतो के संग से मानव का कल्याण होता है।

कलियुग में राम नाम जाप को मुक्तिदाता माना गया है।

राम नाम रुपी औषधि से ही मन के विकारों पर विजय पाई जा सकती है।

राम नाम जाप भगवत् प्राप्ति का सरलतम उपाय है।

नम्रता और परमार्थ के साथ जीवन जीना चाहिए।

निष्काम भाव से की जाने वाली सद्गुरू की सेवा और साधना से भगवान भक्त के वश में हो जाते हैं। भगवान स्वयं साधक के आगे झुककर सेवक बन जाते हैं।

ह्रदय मे बैठे शत्रु को मारे , वो ही शूरवीर है।

राम नाम का निरंतर स्मरण करते रहने से जीवन में आध्यात्मिकता आती है।

गुरू जैसा दूसरा कोई उपकारी नहीं हो सकता।

राम नाम के संकिर्तन में सब समस्याओं का समाधान भरा है।

जिस शरीर से भजन नही हो रहा वो कुडा घर की तरह है।

राम शब्द में कोटि कोटि ब्रम्हान्ड समाया हुआ है।

जो व्यक्ति हमेशा राम का चिंतन करता है भगवान उसको संभालते है।

डीमांड(मांग) भगवान की करनी चाहिए संसार की नही।

जीभ पे लगा हुआ घाव जल्दी भर जाता है परंतु जीभ से दिया घाव जीन्दगी भर नही भरता , इसलिए जीभ का संभलकर उपयोग करना चाहिए।

दुखो के सागर में सद्गुरू ही व्यक्ति के साथ खड़े रहकर शिष्य को भवसागर पार उतारते हैं।

सद्गुरू की शरण में जाने से व्यक्ति के जीवन में अलौकिक क्रान्ति आती है।

ये मानव तन हमे मिला है जिससे मनुष्य नर से नारायण बन जाता है। हमे इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए।[6]

सारे शास्त्रो का सार भगवत नाम स्मरण है।

आशा परम दुःख का कारण है निराशा परम सुख का कारण है ईश्वर को छोडकर और किसी से आशा नही करनी चाहिए।

राम नाम स्मरण से करोड़ों पाप कर्म जलकर नष्ट हो जाते हैं।

जो व्यक्ति भगवान के नाम में विश्वास करता है, वह अवश्य ही जीवन में सफलता अर्जित करता है।

हमे भजन करके अंतकरण को पवित्र करना चाहिए। अंतकरण पवित्र होंगा तभी परमात्मा हमारे अंदर निवास करेंगे।

राम कृपा को आसरो, राम कृपा को जोर ।

राम बिना दिखे नहीं, तीन लोक में ओर।।

शरीर को मै मानना सबसे बडा अपराध हैं।

ज्ञान सर्वत्र है उसे लेने के लिए पात्रता होनी चाहिए।

ह्रदय में बैठे शत्रु को परास्त करना मुश्किल है। लेकिन गुरू की कृपा से ही ये संभव है

जीवन मे सतगुरु ही आधार हैं।

अनंत कोटि ब्रम्हान्डनायक परमात्मा की प्राप्ति कराने में सच्चे सहायक केवल सतगुरू ही है।

गुरू के अंतःकरण से निकला हुआ शब्द ही 'गुरू' का स्वरूप है।

आध्यात्मिकता से जुड़े बिना सारा जीवन व्यर्थ होगा।

धनवान तो वही है जो रामनाम का धन संग्रह करता है।

राम राम रटते रहो तो परिणाम अपने आप प्राप्त हो जाएगा।

सच्चे विश्वास के साथ जो सतगुरू के चरणों का आश्रय ले लेता है उसका कल्याण निश्चित है।

गुरू वही है जो स्वयं तिरता है और दूसरो को भी तारता है।

सतगुरू की महिमा इसीलिए है की हम उनसे उपकृत हैं तथा उनका ऋण हम उतार नही सकते।

अन्तर्यामी भगवान सत्य संकल्प को अवश्य पूरा करते हैं।

सत्संग एंव सतगुरु ही जीवन के सही मार्गदर्शक हैं।

जो शिष्य गुरू कि गर्जना को सहन करता है वो परम पद प्राप्त करता है।

सतगुरू शिष्य को ऐसा अक्षय दान देते है, जिसका कभी विनाश नहीं होता है तथा जिसके द्वारा शिष्य सदा ही आनंद मे गोता लगाता रहता है।

जीवन ऐसा बनाना चाहिए जिसे देखकर प्रत्येक व्यक्ति आकर्षित हो।

सतगुरू के शब्द रूपी जल को ह्रदय में बनाए रखने से शिष्य की जन्म जन्मांतरों की प्यास बुझ जाती है।

सतगुरू का स्वरूप छोटा सा दिखता है परन्तु उनके अन्दर महान आध्यात्मिक धन भरा रहता हैं।

भगवदनाम (रामनाम) रूपी चिंतामणि के द्वारा आत्मा को जानना ही मानव जीवन की उपयोगिता है।

हम सब परमात्मा की संतान है।

संसार परिवर्तनशील है।

अहंता ओर ममता ही सब दुखो की मूल है।

ईश्वर से अपना संबंध पहचानो और लोगों से ईश्वर के नाते व्यवहार करो तो इसी जन्म में कल्याण हो जायेगा ।

जो अपने मन के दोष निकालने के लिए तत्पर रहता है वह इसी जन्म में निर्दोष नारायण का प्रसाद (आत्मसाक्षात्कार) पाने का अधिकारी हो जाता है ।

गुरु की वाणी को निर्णायक होकर नही,निष्ठावान होकर सुनना चाहिए।

सत्संग मानवता का निर्माण करती है।

वर्तमान का सदुपयोग ही भूत और भविष्य की चिंता मिटा देता है।

ईश्वर स्मरण करने वाला साधक ही इस मृत्यु के जाल से बच सकता है।

नाशवान शरीर की सुंदरता का अभिमान ने करके शरीर के द्वारा राम भजन व सत्संग करना ही शरीर की उपयोगिता है।[7]

संदर्भ

[1] रामद्वारा

[2] राम चरण (गुरु)

[3] अंतर्राष्ट्रीय राम स्नेही सम्प्रदाय

[4] रामस्नेही संप्रदाय के संत कवि Archived 2010-01-28 at the वेबैक मशीन

[5] रामस्नेही सम्प्रदाय

[6] *तोन्गारिया, राहुल.* "राजस्थानी संस्कृति में दादू एवं रामस्नेही सम्प्रदाय का योगदान". *ignca.nic.in.* मूल *से 24 सितंबर 2015 को पुरालेखित.* अभिगमन तिथि 18 अगस्त 2015.

[7] "रामस्नेही संप्रदाय के प्रवर्तक रामचरण महाप्रभु". *दैनिक भास्कर. मूल से 23 सितंबर 2015 को* पुरालेखित. अभिगमन तिथि 18 अगस्त 2015.

International Journal of Trend in Scientific Research and Development
IJTSRD
International Journal of Trend in Scientific Research and Development
ISSN: 2456-6470